वर्ष ३३
अंक १२

तित्थयर

मूल्य : १०.०० रुपये
मार्च २०१०

॥ जैन भवन ॥

With Best Complements :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,

कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट
अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा
कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़
सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३३ अंक - १२ मार्च २०१०

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिये
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें —
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 2000.00,

Published by Smt. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा,

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	संसारी जीवों का स्वरूप		४७९
२.	गृहस्थ धर्म	पू० श्री जवाहरलालजी म. सा.	४९०
३.	हरिश्चन्द्र-तारा		५०१

कवरपृष्ठ : पुरुलिया जिले का प्राचीन सराक जैन मन्दिर

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

संसारी जीवों का स्वरूप

लाभ :

अनन्तानुबन्धी– किरमच के रंग जैसा, जो एक बार चढ़ने पर उखड़ नहीं जाता।

अप्रत्याख्यानी– गाड़ी के कीटे जैसा, जो एक बार वस्त्र को गन्दा कर लेने पर बहुत प्रयत्न से मिटता है।

प्रत्याख्यानी– कीचड़ जैसा कि जो कपड़ों पर पड़ जाने पर सामान्य प्रयत्न से दूर हो जाता है।

संज्वलन– हल्दी के रंग जैसा जो सूर्य की धूप लगते ही दूर हो जाय।

नौकषाय के सात प्रकार होते हैं :– (१) हास्य, (२) रति, (३) अरति, (४) भय, (५) शोक, (६) जुगुप्सा और (७) वेद (जातीय संज्ञा– (Sexual instinct)।

यदि वेद के स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद आदि तीन प्रकार मान लें तो हास्यादि छह और तीन वेद मिलकर नौ प्रकार हो जाते हैं।

नेरइयातिरिक्खाउं, मणुस्साउं तहेव य।
देवाउअं चउत्थं तु, आउकम्मं चउव्विहं ।।१२

आयुकर्म के चार प्रकार हैं– (१) नरकायु, (२) तीर्यचायु, (३) मनुष्यायु और (४) देवायु।

विवेचन– जीव को जिसके कारण नरकयोनि में रहना पड़े, वह नरकायु, तिर्यंच योनि में रहना पड़े, वह तिर्यचायु, मनुष्य योनि में रहना पड़े, वह मनुष्यायु और देवयोनि में रहना पड़े, वह देवायु।

नामकम्मं तु दुविहं सुहमसुहं च आहियं।
सुहस्स उ बहू भेया, एभेव असुहस्स वि।।१३

नामकर्म दो प्रकार का कहा गया है— (१) शुभ और (२) अशुभ। शुभ नाम-कर्म के अनेक भेद हैं, और अशुभ नाम-कर्म के भी अनेक भेद हैं।

विवेचन— जिसके योग से जीव को मनुष्य और देव की गति, सुन्दर अंग-उपांग, अच्छा स्वरूप, वचन की मधुरता, लोकप्रियता, यशस्विता आदि प्राप्त हों, वह शुभ नामकर्म कहा जाता है। और नरक तथा तिर्यंच की गति, बेडोल अंग-उपांग, कुरूपता, वचन की कठोरता, अप्रियता, अपयश आदि प्राप्त हो वह अशुभ नामकर्म कहा जाता है।

शुभ नाम-कर्म के अनन्त भेद हैं, किन्तु मध्यम अपेक्षा से ३७ भेद माने जाते हैं और अशुभ नाम-कर्म के भी अनन्त भेद हैं, किन्तु मध्यम अपेक्षा से ३४ भेद माने जाते हैं।

गोयकम्मं तु दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं।
उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं नीयं वि आहियं।।१४

गोत्रकर्म दो प्रकार का होता है— (१) उच्च और (२) नीच। इन दोनों के आठ-आठ और प्रकार कहे गये हैं।

विवेचन— उच्च गोत्रकर्म के आठ प्रकार इस तरह समझना चाहिये :- (१) उच्च जाति में उत्पन्न होना, (२) उच्च कुल में उत्पन्न होना, (३) बलवान् बनना, (४) सौन्दर्यशाली होना, (५) तपस्वी बनना, (६) यथेष्ठ अर्थप्राप्ति होना, (७) विद्वान् बनना और (८) सम्पत्तिशाली बनना। जबकि नीचगोत्रकर्म के आठ प्रकार इनसे विपरीत समझना चाहिए।

दाणे लाभे य भोगे य, उपभोगे वीरिए तहा।
पंचविहमंतरायं, समासेण वियाहियं ।।१५

— उत्त० अ० ३३, गा० १ से १५)

अन्तराय कर्म को संक्षेप में पाँच प्रकार का कहा गया है- (१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और (५) वीर्यान्तराय।

विवेचन– दान देने की वस्तु विद्यमान रहने पर तथा उसके देने से होनेवाले लाभों का ज्ञान होते हुए भी, जिसके कारण दान नहीं दिया जा सके, वह दानान्तराय-कर्म कहलाता है। इसी तरह प्रयत्न करने पर भी जिस कारण किसी वस्तु का लाभ न हो उसे लाभान्तराय कर्म कहते हैं। खान-पानादि सभी सामग्रियों के विद्यमान होने पर भी जिस वजह उसका खाने-पीने में उपयोग न किया जा सके और कदाचित् खा-पी सके तो उसका पाचन न हो सके वह भोगान्तराय कर्म। जो एक बार ही काम में आये उसे भोग्य पदार्थ कहते हैं, जैसे भोजन, पानी आदि। जो बार-बार उपयोग में लिया जा सके उसे उपभोग्य कहते हैं, जैसे वस्त्र, आभूषण आदि। जिसके कारण उपभोग की सामग्री जब चाहिये तब और जितने प्रमाण में चाहिए उतने प्रमाण में स्वाधीन रहते हुए भी उपभोग में न आ सके, वह उपभोगान्तराय कर्म। और जिसके उदय मात्र से स्वयं युवा और बलवान होने पर भी कोई कार्य सिद्ध न कर सके वह वीर्यान्तराय-कर्म कहलाता है।

उदहीसरिसनामाणं, तीसई कोडिकोडीओ।
उक्कोसिया ठिई होई, अन्तोमुहुत्तं जहण्णिया।।१६
आवरणिज्जाण दुण्हं पि, वेयणिज्जे तहेव य।
अन्तराए य कम्मंमि, ठिई एसा वियाहिया।।१७

— उत्त० अ० ३३, गा० १ से १५)

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तराय इन चार कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागरोपम की होती है।

विवेचन– जब आत्मप्रदेशों के साथ कर्म का बन्धन होता है, तभी उसकी स्थिति अर्थात् टिकने का समय भी निश्चित हो जाता है। अतः वे इतने समय तक आत्मा के साथ बने रहते हैं। उसका जघन्य अर्थात् कम से कम और उत्कृष्ट अर्थात् अधिक से अधिक कितना प्रमाण होता है। इसी बात का यहाँ स्पष्टीकरण किया गया है। नौ समय से लेकर दो घड़ी में एक समय न्यून को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

उदहीसरिसनामाणं, सत्तरिं कोडिकोडीओ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अन्तोमुहुत्तं जहण्णिया।।१८
तित्तीसं सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया।
ठिई उ आउकम्मस्स, अन्तोमुहुत्तं जहण्णिया।।१९
उदहीसरिसनामाणं वीसई कोडिकोडिओ।
नामगोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्ता जहण्णिया।।२०

– उत्त० अ० ३३, गा० २१ से २३)

मोहनोयकर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर- कोडाकोडी सागरोपम और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। नामकर्म और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट-स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम और जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की होती है।

दुर्लभ संयोग :

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो।
मामुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं।।१

इस संसार में प्राणी मात्र को मनुष्यजन्म, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम की प्रवृत्ति जैसे चार उत्तर अंगों की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है।

समावण्णाण संसारे, णाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा णाणाविहा कट्ट, पुढो विस्संभिया पया।।२

संसार में भिन्न भिन्न गोत्र और जाति में पैदा हुए जीव विविध कर्म करके संसार में भिन्न भिन्न स्वरूप में उत्पन्न होते हैं।

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया।
एगया आसुरं कायं, आहाकम्मेहिं गच्छई।।३

अपने कर्म के अनुसार यह जीव किसी समय देवलोक में, किसी समय नरक में तो किसी समय असुरकाय में (भुवनपति इत्यादि में) उत्पन्न होता है।

एगया खत्तिओ होई, तओ चंडाल बुक्कसो।
तओ कीड–पयंगोय, तओ कुंथू–पिवीलिया।।४

जीव किसी समय क्षत्रिय, किसी समय चाण्डाल, किसी समय बुक्कस, (वर्णसंकर जाति), किसी समय कीट, किसी समय पतंग, किसी समय कुंथू और किसी समय चींटी भी बनता है।

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्मकिव्विसा।
ण णिव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया।।५

सर्वप्रकार की ऋद्धि-वैभव होने पर भी जिस तरह क्षत्रियों की राज्यतृष्णा शान्त नहीं होती, ठीक उसी तरह कर्मरूपी मैल से लिपटे जीव भी अनेकविध योनियों में परिभ्रमण करने के बावजूद भी विरक्त नहीं होते।

कम्मसंगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो।।६

कर्म के सम्बन्ध से मूढ बने हुए प्राणी असंख्य वेदनाएं प्राप्त कर तथा दुःखी होकर मनुष्ययोनि के अतिरिक्त दूसरी योनियों में जन्म धारण कर बार-बार हना जाता है।

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं।।७

क्रमशः अर्थात् एक योनि में से दूसरी योनि में भटकते हुए, की गई अकामनिर्जरा के कारण कर्मों का भार हलका हो जाने से जीव-शुद्धि को पाता है और किसी समय मनुष्ययोनि में जन्म धारता है।

विवेचन– अज्ञात अथवा मूढ़ दशा में दुःख सहन करते हुए कर्म की जो निर्जरा होती है, वह अकामनिर्जरा कहलाती है।

मानव-जन्म की दुर्लभता समझने के लिये श्रीभद्रबाहुस्वामी ने श्री उत्तराध्ययन-सूत्र की निर्युक्ति में निम्नलिखित दस दृष्टान्त दिये है।

(१) **चूल्हे का दृष्टान्त–** चक्रवर्ती राजा छह खण्ड पृथ्वी का अधिपति होता है। उसके राज्य में कितने चूल्हे होते हैं? प्रथम चक्रवर्ती के चूल्हे पर भोजन हो और बाद में प्रत्येक चूल्हे पर भोजन करना हो तो चक्रवर्ती के चूल्हें पर भला पुनः भोजन का कब अवसर आवे?

(२) **पासों का दृष्टान्त–** किसी खेल में यन्त्रमय पासों का उपयोग करके किसी का सारा धन जीत लिया गया हो और उस पराजित मनुष्य को अक्ष-क्रीड़ा से फिर अपना धन प्राप्त करना हो, तो भला कब तक प्राप्त हो?

(३) **धान्य का दृष्टान्त–** लाखों मन धान्य के ढेर में यदि सरसों के थोड़े दाने मिला दिये हो और उन्हें वापस निकालने का प्रयत्न किया जाय तो भला कब मिल सकते हैं?

(४) **द्यूत-क्रीड़ा का दृष्टान्त–** किसी राजमहल के १००८ स्तम्भ हों और उनमें से प्रत्येक स्तम्भ के १०८ विभाग हों तथा उक्त प्रत्येक विभाग को जुआ में जीतने पर ही राज्य मिलता हो, तो भला वह राज्य कब मिल सकेगा?

(५) **रत्न का दृष्टान्त–** सागर में प्रवास करते समय पास में रहे रत्न अगाध जल में डूब जाय तो भला खोज करने के बावजूद भी वे रत्न कब तक मिल सकेंगे?

(६) **स्वप्न का दृष्टान्त–** राज्य की प्राप्ति करानेवाला शुभ स्वप्न देखा हो और उससे राज्य की प्राप्ति भी हो गई हो। यदि ऐसा ही स्वप्न पुनः लाने के लिये कोई प्रयत्न करे, तो भला ऐसा स्वप्न पुनः कब ला सकता है?

(७) **चक्र का दृष्टान्त–** चक्र अर्थात् राधावेध। खम्भे के ऊँचे सिरे पर यन्त्र-प्रयोग से चक्राकार में एक पुतली घूमती हो, उसका नाम राधा। स्तम्भ के नीचे तेल की कढ़ाई उझलती हो, खम्भे के मध्य भाग में एक तराजू बिठा दिया गया हो और उसमें खड़े रहकर नीचे की कढ़ाई में पड़े राधा के प्रतिबिंब के आधार पर वाण मारकर उसकी बाँई आँख बींधना हो तो भला कब बींध सकता है।

(८) **चर्म का दृष्टान्त–** यहाँ चर्म शब्द का अर्थ चमड़े जैसी मोटी सरोवर के ऊपर की शैवाल है। किसी पूर्णिमा की रात्रि में वायु के तेज झोंका से शैवाल जरा इधर-उधर हो जाय, फलस्वरूप उसके नीचे छिपा हुआ कोई कछुआ चन्द्रमा के दर्शन कर ले और यदि वह पुनः वैसा ही चन्द्र-दर्शन अपने सगे-सम्बन्धियों को कराना चाहे तो भला कब करवा सकता है? वायु के झोंकों से उसी स्थान पर शैवाल का उधर-उधर खिसकना और वैसे ही पूर्णिमा की रात्रि का होना, यह सब कितना दुर्लभ है?

(९) **युग का दृष्टान्त–** युग अर्थात् धुरा-जूड़ा। बैल के कन्धे पर उसे बराबर बिठाने के लिये लकड़ी के एक छोटे डण्डे का उपयोग किया जाता है। यदि वह जूड़ा महासागर के एक छोर से पानी में डाली गई

हो और दूसरे छोर से लकड़ी, तो भला उस जूड़े पर वह लकड़ी कब बैठ सकेगी?

(१०) **परमाणु का दृष्टान्त–** एक स्तम्भ का अत्यन्त महीन चूर्ण करके फूँकनी में भर दिया हो और किसी पर्वत के शिखर पर खड़ा होकर फूँक द्वारा उसे हवा में उड़ा दिया जाय तो भला उक्त चूर्ण के सभी परमाणु पुनः कब एकत्र हो सकते हैं?

यदि इन सभी प्रश्नों का उत्तर **बहुत समय और बहुत कष्ट के बाद** यही है तो मनुष्यजन्म भी दीर्घावधि के पश्चात् और अत्यधिक कष्टों के बाद प्राप्त होता है, अर्थात् वह अतिदुर्लभ है।

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खन्तिमहिंसियं।।८

कदाचित् मनुष्यजन्म मिल भी जाय तो भी धर्मशास्त्र के वचन सुनना अत्यन्त दुर्लभ है, जिन्हें सुनकर जीव तप, क्षमा तथा अहिंसा को स्वीकार करता है।

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई।।९

कदाचित् धर्मशास्त्रों के वचन सुन भी ले, तो भी उस पर श्रद्धा होना अति दुर्लभ है। न्यायमार्ग पर चलने की बात सुनकर भी बहुत से लोग (उसका अनुसरण नहीं करते और दुराचारी स्वच्छन्दी जीवन बिताकर) भ्रष्ट बन जाते हैं।

सुई च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं।
बहवे रोयमाणा वि, णो य णं पडिवज्जई।।१०

कदाचित् धर्मशास्त्रों के वचन सुने हों और उनपर श्रद्धा भी जम गई हो, पर संयम-मार्ग में वीर्यस्फुरण होना अर्थात् प्रवृत्ति करना

अत्यन्त कठिन है। बहुत से लोग श्रद्धासम्पन्न होते हुए भी संयममार्ग में प्रवृत नहीं होते।

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धं, संवुडे निद्धुणे रयं।।११

जो जीव मनुष्य-जीवन प्राप्त करके धर्मशास्त्र के वचन सुनता है, उसपर श्रद्धा रखता है, और संयम-मार्ग में प्रवृत्त होता है, वह तपस्वी और संवृत्त (संवरवाला) बनकर अपने (बद्ध और बद्ध्यमान) सभी कर्मों का क्षय कर देता है, अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है।

सोही उज्जुभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाणं परमं जाइ, धयसित्तेव्व पावए।।१२

सरलता से युक्त आत्मा की शुद्धि होती है और ऐसी आत्मा में ही धर्म स्थिर रह सकता है। घृत से सींची हुई अग्नि के समान वह देदीप्यमान होकर परम निर्वाण (मुक्ति) को प्राप्त करता है।

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए।
पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं।।१३

कर्मों के कारण को अर्थात् मिथ्यात्व, अविरति आदि को दूर करो। क्षमा, सरलता, मृदुता, निर्लोभतादि प्राप्त कर यश का संचय करो। ऐसा करनेवाला मनुष्य पार्थिव शरीर छोड़कर ऊर्ध्व दिशा की ओर प्रयाण करता है, अर्थात् स्वर्ग अथवा मोक्ष में जाता है।

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तर उत्तरा।
महासुक्का व दिप्पंता, मन्नंता अपुणच्चयं।।१४

उत्कृष्ट आचारों का पालन करने से जीव उत्तरोत्तर विमानवासी देव बनता है। वहाँ वह अतिशय सुशोभित और देदीप्यमान शरीर धारण

करता है तथा स्वर्गीय सुखों में इतना लीन हो जाता है कि **मुझे अब यहाँ से च्यवित नहीं होना है** ऐसा समझ लेता है।

अप्पिया देवकामाणं, कामरूवविउव्विणो।

उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहू।।१५

देव सम्बन्धित काम-सुखों को प्राप्त एवं इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्तिवाले ये देव अनेक सैकड़ों पूर्व वर्षों तक ऊँचे स्वर्ग में रहते हैं।

विवेचन– एक पूर्व = ७०५६०००००००००० सत्तर हजार पाँच सौ साठ अरब वर्ष।

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।

उवेंति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायइ।।१६

वहाँ अपने अपने स्थान रहे हुए ये देव आयुष्य का क्षय होने पर मनुष्ययोनि को प्राप्त करते हैं और उन्हें दस अंगों की प्राप्ति होती है।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पोरुसं।

चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जइ।।१७

उक्त स्वर्ग में से च्यवित देव जहाँ क्षेत्र (खुली जगह-बाग-बगीचा आदि), वास्तु (मकान, महल आदि), हिरण्य (सोना, चाँदी, जवाहरात, आदि) और पशु तथा दास-दासी रूपी चार कामस्कन्ध अर्थात् सुखभोग की सामग्री हो, वहाँ जन्म धारण करते हैं।

मित्तवं नाइवं होइ, उच्चागोत्ते य वण्णवं।

अप्पायके महापन्ने, अभिजाय जसो बले।।१८

(ऊपर चार काम-स्कन्धरूपी एक अंग का निर्देश किया गया है। शेष अन्य नौ अंगों का वर्णन इस गाथा में किया गया है) (२) उसके अनेक सन्मित्र होते हैं, (३) उसके बहुत से कुटुम्बिजन होते हैं, (४) वह

उत्तम गोत्र में जन्म लेता है, (५) सौन्दर्यशाली होता है, (६) व्याधि-रहित होता है, (७) बुद्धि-सम्पन्न होता है, (८) विनयी होता है, (९) यशस्वी होता है और (१०) बलवान् भी होता है। इस प्रकार उसे दस अंग की प्राप्ति होती है।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुविं विसुद्ध सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया।।१९

आयुष्य के अनुसार मनुष्य योनि के उत्तमोत्तम भोग भोगकर तथा पूर्वभव में किये हुए शुद्ध धर्म के आचरण के फलस्वरूप वह सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है।

चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए।।२०

इन चार अंगों को दुर्लभ जानकर मनुष्य को संयम-मार्ग ग्रहण करना चाहिए। तप द्वारा कर्मों को दूरकर देनेवाला मनुष्य शाश्वत सिद्ध होता है।

क्रमशः

गृहस्थ धर्म

पू० श्री जवाहरलालजी म. सा.

९. संग :

ब्रह्मचारी कामी या व्यभिचारी का संग कदापि न करे। ऐसे लोगों की संगति से, कभी न कभी ब्रह्मचर्य का नष्ट होना सम्भव है। संगति का प्रभाव पड़ता ही है। विद्वानों का कथन है :-

कामिनां कामिनीनाञ्च संगात्कामी भवेत्पुमान्।

कामी पुरुष और भोगवती-स्त्री के साथ रहने वाला पुरुष कामी बन जाता है।

इसलिए ब्रह्मचारी को ऐसी संगति से सदैव बचते रहना चाहिए; जिससे कामोत्पत्ति और ब्रह्मचर्य नष्ट होने का भय रहता है।

१०. स्त्रीपरिचय :

ब्रह्मचारी को, स्त्रियों का परिचय न बढ़ाने देना चाहिये, न अपने पास अधिक समय तक बैठा कर वार्तालाप ही करना चाहिये। प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य की नौ गुप्ति बताते हुए कहा है:-

नो इत्थीणं सेवित्ता भवइ, न इत्थीणं इन्दियाणि मणोहराइं रम्मइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ।

ब्रह्मचारी स्त्री-सेवन न करे, स्त्रियों के मनोहर और रमणीय अंगों का अवलोकन न करे, न प्रशंसा ही करे।

स्त्रियों के देखने से भी ब्रह्मचारी के लिये बड़े-बड़े अनर्थ सम्भव हैं। शास्त्र में यह बात नहीं मिलती कि मणिरथ पहले ही दुराचारी था। मदनरेखा पर भी उसकी कुदृष्टि उसको देखने से पूर्व न थी, किन्तु उसने जब से मयणरेखा को देखा, तभी से उसकी कुदृष्टि हुई। उस देखने मात्र

से होने वाली कुदृष्टि का परिणाम यह हुआ कि उसने मदनरेखा के लिये अपने छोटे भाई को जिसको उसने आग्रह पूर्वक युवराज बनाया था–मार डाला और अन्त में स्वयं को भी मरना पड़ा। इसलिये ब्रह्मचारी को न तो स्त्रियों को देखना ही चाहिए और न उनके परिचय ही बढ़ाना चाहिए।

अन्य ग्रन्थकारों ने भी ब्रह्मचारी को स्त्रियों के साथ परिचय बढ़ाने से रोका है। जैसे :-

अविद्वांसमलं लोके विद्वासमपि वा पुनः।
प्रभादाह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधःवशानुगम्।।१
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।२

—मनुस्मृति अ० २

मैं विद्वान या जितेन्द्रिय हूँ, ऐसा समझकर स्त्रियों के समीप न बैठना चाहिए, क्योंकि चाहे विद्वान हो या मूर्ख, देह धर्म से, काम-क्रोध के वशीभूत शरीर को स्त्रियां कुमार्ग पर ले जाने में समर्थ हैं। इसीलिए चाहे माता हो, बहन हो या पुत्री हो, इनके साथ भी एकान्त स्थान में न बैठें, क्योंकि इन्द्रियों का बलवान समूह नीति-रीति से चलने वाले पुरुष को भी अपने पथ से विचलित कर देता है।

ब्रह्मचारी को स्त्रियों से परिचय न करने का उपदेश देते हुए शास्त्र में कहा है :-

हत्थपायपलिच्छिन्नं कन्ननासविगप्पिअं।
अवि वाससयं नारिं बंभयारी विवज्जए।।

—दशवैकालिक सूत्र अ० ८ वां

जिसके हाथ-पांव टूटे हों, नाक-कान भी कटे हुए हों और अवस्था में भी सौ वर्ष की हो, ऐसी स्त्री के साथ भी ब्रह्मचारी परिचय न करे, न उसके साथ एकान्त में रहे।

ऐसी स्त्री भी, पुरुष के हृदय को और पुरुष भी स्त्री के हृदय को विचलित करने में समर्थ हो सकता है; अच्छी स्त्री और अच्छे पुरुष की तो बात ही दूसरी है। ब्रह्मचारी को स्त्रियों के परिचय से बचना ही श्रेयस्कर है। पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज भी कहा करते थे—

गढ़ के पासे डूंगरी, कदियक गढ़ को भंग।
साधू पासे अस्तरी, यो ही बड़ो कुसंग।।
यो ही बड़ो कुसंग भंग तो शील में होसी।
बैठ नारि के पास मूल की पूंजी खोसी।।
शीलादिक आचार के पालन से मन भागा।
नाथ कहे रे बालका ये जोग को रोग लागा।।

११. मातृ, पुत्री और भगिनी भाव :

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत के आराधक को स्त्रियों के प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव रखना बहुत ही हितकारी है। धर्म से किंचित् भी प्रेम करने वाले के हृदय में मां, बहन और लड़की-के लिये कोई विकार-भावना नहीं होती। हां, जिन्होंने मनुष्यता को ही तिलांजलि दे दी है, जिनमें से मनुष्यत्व ही निकल गया है, उनकी तो बात ही अलग है। ऐसे लोग माँ, बेटी और बहिन तो क्या, पशुओं से भी दुष्कर्म करने से नहीं चूकते।

मातृ, पुत्री और भगिनी भाव, ब्रह्मचर्य की रक्षा का एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। जो स्त्रियाँ आयु में बड़ी हैं, उनके प्रति मातृ-भाव, जो समान है, उनके प्रति भगिनी-भाव और जो छोटी है, उनके प्रति पुत्री-भाव रखने से हृदय में विकार उत्पन्न नहीं होता। मातृ, पुत्री और भगिनी भाव का क्या माहात्म्य है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक लखारा अपनी गधी पर, चूड़ियां लादे हुए चला जा रहा था। गधी धीरे-धीरे चलती थी, इसलिये लखारा उसे हांकते हुए कहता जाता

था,—माँ चल! बहन चल! बेटी चल! लखारे के इस कथन को सुनकर, मार्ग चलने वाले लोग उससे कहने लगे कि—तू कैसा मूर्ख है। गधी को भी माँ, बहन और बेटी कोई कहता है? कहीं गधी भी माँ, बहन या बेटी हो सकती है? लोगों की बात सुनकर, लखारा कहने लगा—भाई, यद्यपि गधी होने के कारण यह मेरी माँ, बहन या बेटी नहीं हो सकती, लेकिन स्त्री जाति के प्रति माँ, बहन और बेटी की भावना को जन्म देने वाली तो हो सकती है न? यदि मैं इस गधी को मातृ, पुत्री और भगिनी भाव से न देखूंगा, तो स्त्रियों के प्रति ऐसी भावना कब रख सकूंगा? मैं लखारा हूँ। स्त्रियों को चूड़ियां पहनाना मेरा काम है, इसलिये बड़े-बड़े घरों में मेरा प्रवेश है। नित्य ही, सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों के कोमल-कोमल हाथ, चूड़ियाँ पहनाने के लिये, मेरे हाथों में आया करते हैं। यदि मैं उनके प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव न रखूं— किसी प्रकार की कुभावना रखूं— तो मैं लोगों में से अपना विश्वास भी खो दूँ तथा व्यवसाय से भी हाथ धो बैठूं। मैं इस गधी को भी माँ, बहन और बेटी के समान मान सकता हूँ। लखारे की बात सुनकर सबको चुप हो जाना पड़ा।

तात्पर्य यह है कि सब स्त्रियों के प्रति मातृ, भगिनी और पुत्री भाव रखने से स्त्रियों के प्रति, कुभावनाएं उत्पन्न ही नहीं होती। इस प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा होती है।

१२. उपवास :

वीर्य एक ऐसी वस्तु है, जिसे बिना उपाय के शरीर में रोक रखना--पचा जाना—बहुत कठिन कार्य है। ऐसा करने के लिये उपायों की आवश्यकता है। इस प्रकार के उपायों में से एक उपाय, उपवास या तपस्या भी है। जैन शास्त्रों में तप का प्रतिपादन इसलिये भी विशेष रूप से किया गया है कि उससे ब्रह्मचर्यव्रत सुरक्षित रहता है और ब्रह्मचर्य के बाधक दोष नष्ट हो जाते हैं। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में आहार-त्याग करने के छः कारणों

में से एक कारण यह बतलाया है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये आहार छोड़ दे। इस बात का समर्थन अन्य ग्रन्थकार भी करते हैं। जैसे :–

आहारान् पचति शिखी दोषान् आहारवर्जितः।

–आयुर्वेद।

आहार को अग्नि पचाती है और दोषों को उपवास पचाते हैं।

१३. ध्यान :

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये ध्यान की भी आवश्यकता है। ध्यान ब्रह्मचर्य की रक्षा का प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए, प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है :–

झाणबरकवाडसुकयमज्झप्पदिण्णफलिहं।

ध्यान, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करने वाला कपाट है। मनुस्मृति में कहा है :–

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मला :।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्।।

जिस प्रकार अग्नि में डालकर तपाने से धातुओं का मल भस्म हो जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं।

१४. नियमितता :

ब्रह्मचारी का जीवन अनियमित नहीं होना चाहिए। अनियमित जीवन, प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। उसके प्रत्येक कार्य, नियमित रूप से ठीक समय पर हों। कोई समय, व्यर्थ या खाली न जावे। न कोई कार्य, असमय पर ही हो। अनियमितता से बचे रहने पर ही ब्रह्मचारी स्थिर रहता है।

१५. ईश्वर-प्रार्थना :

ब्रह्मचारी के लिये सबसे बड़ा नियम ईश्वर-प्रार्थना है। नियमित

रूप से प्रातः सायं ईश्वर की प्रार्थना ब्रह्मचर्य की रक्षा का एक अच्छा साधन है। ईश्वर-प्रार्थनादि नियमों का पालन करने से ब्रह्मचर्य के साथ ही दूसरे कार्यों की सफलता में भी सहायता मिलती है।

इन नियमों के सिवा और भी बहुत से छोटे-छोटे नियम ऐसे हैं जिनका पालन करने पर ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है और पालन न करने पर ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। जैसे कि ब्रह्मचारी को औढ़ना-बिछौना नरम न रखना, कड़ा रखना, मुलायम या चटक-मटक वाले वस्त्र न पहनना, स्त्रियों के चित्र न देखना और न रखना आदि। इस प्रकार के समस्त नियमों का पालन करने वाला ही अपने व्रत को निर्दोष रूप में पाल सकता है।

स्त्रियां और ब्रह्मचर्य :

किन्नाप्नोति रमारूपा ब्रह्मचर्यतपस्विनी।

उस लक्ष्मी-रूपी स्त्री के लिए कुछ भी कठिन नहीं है, जो ब्रह्मचर्य-तप की तपस्विनी है।

कुछ लोगों का कथन है कि स्त्रियों को पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं पालना चाहिए, लेकिन जैन-शास्त्र इस कथन का समर्थन नहीं, अपितु विरोधी है। जैन-शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का जैसा उपदेश पुरुषों के लिये है, वैसा ही उपदेश स्त्रियों के लिये भी है। जैन-शास्त्रों का यह उपदेश आदर्श रहित नहीं किन्तु आदर्श सहित है। भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नाम्नी कन्याओं ने कर्म-भूमि के प्रारम्भिक युग में ही पूर्ण ब्रह्मचारिणी रहकर स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य पालन करने का आदर्श रख दिया था। उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ स्त्री ही थे। स्त्री होते हुए भी उन्होने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था और तीर्थंकर पद प्राप्त किया था। इसी प्रकार राजिमती, चन्दनबाला आदि सतियों ने भी अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया है। सारांश यह कि स्त्रियां ब्रह्मचर्य न पालें, ब्रह्मचारिणी न

हो यह बात, जैनशास्त्रों से विरुद्ध है। जैन-शास्त्र इस विषय में स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकारी बताते हैं। आयु, देश काल आदि किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाते। वे कहते हैं कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, ब्रह्मचर्य का पालन जो भी करे इससे होने वाले लाभ को वहीं प्राप्त कर सकता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां ब्रह्मचर्य का पालन भी अधिक सुचारू-रूप से कर सकती हैं। जैन-शास्त्रों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनमें स्त्रियों ने ब्रह्मचर्य से पतित होते हुए पुरुषों को ब्रह्मचर्य पर स्थिर किया। जैसे कि सती राजमती ने रथनेमि को और कोशा नाम्नी श्राविका ने स्थूलभद्रजी के एक गुरु-भाई को ब्रह्मचर्य से पतित होने से बचाया था।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य पुरुषों ही के लिये नहीं है किन्तु स्त्रियों के लिये भी वैसा ही आवश्यक है। स्त्रियाँ भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकती हैं।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत की आराधना के लिये स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है, जो पुरुषों के लिए पिछले प्रकरण में बताये गये हैं। हां, यह अन्तर अवश्य होगा कि जहाँ ब्रह्मचारी के लिये स्त्रियों का साथ और उनकी प्रशंसा आदि वर्ज्य हैं, वहाँ ब्रह्मचारिणी को पुरुषों का साथ, उनकी कथा आदि सर्व वर्ज्य समझना चाहिए और जहाँ ब्रह्मचारी को स्त्रियों से बचने का नियम बताया गया है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को पुरुषों से भी बचने का नियम समझना चाहिए। शेष सब नियम स्त्रियों के लिये भी वैसे ही हैं, जैसे पुरुषों के लिए हैं और जो बताये जा चुके हैं।

विवाह :

तृषा शुष्यत्यास्यं पिबति सलिलं स्वादु सुरभि,
क्षुधार्त्तः सन् शालीन् कवलयति शाकादि वलितान्।

प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूम्,
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः।।

—वैराग्यशतक

जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता है तब वह शीतल, सुगन्धित और निर्मल जल पीकर तृषा के दुःख से मुक्त होता है। जब भूख सताती है तब शाकादि के साथ भोजन करके क्षुधा का कष्ट मिटाता है। जब कामाग्नि प्रचण्ड होती है, तब सुन्दर-स्त्री को हृदय से लगाता है। इस प्रकार जल, भोजन और स्त्री एक-एक रोग की दवा है लेकिन लोगों ने उल्टा ही मान रखा है अर्थात् लोग इन दवाओं में भी सुख मानते हैं।

१. मनुष्य-जन्म उत्तम क्यों है?

मनुष्य शरीर सब शरीरों से उत्तम क्यों माना जाता है, इस विषय में कहा है :-

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणां धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिःसमाना

आहार, निद्रा, भय और मैथुन की दृष्टि से तो मनुष्य और पशु समान ही है, लेकिन मनुष्य में धर्म है, इसी से वह पशु की अपेक्षा बड़ा है। धर्महीन मनुष्य पशु के समान है।

मनुष्य में धर्म है, इसलिए वह सब प्राणियों में उत्तम माना जाता है। लेकिन आहारादि में ही धर्म नहीं है। यदि आहारादि में ही धर्म होता है तो उक्त श्लोक में धर्म को आहारादि से भिन्न न बताया जाता। इस श्लोक में धर्म को आहारादि से भिन्न बतलाया गया है, इसलिए यह देखना है कि धर्म क्या है, जिसके होने पर मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम माना जाता है।

इस लोक और परलोक में जिसके द्वारा उन्नति हो, उसी का नाम धर्म है। भगवान महावीर ने धर्म के सूत्र-धर्म और चारित्र-धर्म ये दो भेद बताये हैं। इनका विवेचन यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ तो केवल यह

बताना है कि भगवान ने चारित्र धर्म की आराधना के लिये जो पांच व्रत बताये हैं, उनमें से चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है। इसका पालन करने पर ही मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम हो सकता है। भोग भोगने या अब्रह्मचर्य का सेवन करने के कारण मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम नहीं कहला सकता।

आत्मा जब निगोद में पड़ा था, तब इसे यह भी मालूम नहीं था कि मैं जीव हूँ। पुण्य के बढ़ने से यहीं आत्मा निगोद से निकल कर अनेक योनियों को भोगता हुआ, अनेक प्रकार के कष्ट सहता हुआ, इस मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर सका है। आत्मा ने पूर्व भोगी हुई अनेक योनियों में दुर्विषय भोग को ही इष्ट मान रखा था, इसलिये इसने उन्हें खूब भोगा, लेकिन न तो इसे उन भोगों की ओर से तृप्ति ही हुई न बार-बार के जन्म-मरण से मुक्ति ही हुई। उस समय तो इसको ऐसा ज्ञान न था—इसकी बुद्धि विकसित न थी; यह धर्म को जानता ही न था। लेकिन यदि मनुष्य जन्म पाकर भी, यह पशु-योनि में भोगे जाने वाले भोगों को ही भोगे, उन्हीं में सुख माने, जन्म-मरण से मुक्त होने का उपाय न करे तो इससे अधिक भूल, अज्ञानता या मूर्खता और क्या होगी? जो भोग पशु-शरीर में भी भोगे जा सकते हैं, उनके भोगने में इस मनुष्य शरीर को नष्ट करना कौन सी बुद्धिमानी है? केवल चार आने में आ सकने वाली मिठाई के बदले में चिन्तामणि ऐसा रत्न दे देने की मूर्खता के समान क्षणिक, अस्थायी और हर प्रकार से हानि करने वाले दुर्विषय भोग में, उत्कृष्ट मनुष्य-जन्म खो देने की मूर्खता से अधिक मूर्खता और क्या होगी? मनुष्य-शरीर दुर्विषय-भोग के लिये नहीं है; किन्तु उन्हें त्यागने के लिये है। मनुष्य-जन्म प्राप्त होने का वास्तविक लाभ तभी है, जब दुर्विषय भोग त्यागकर ब्रह्मचर्य-रूपी तप का अनुष्ठान किया जाय। भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुए कहा था—

हे पुत्रों! देवधारियों का यह शरीर दुःखदायी विषय भोग के योग्य नहीं है, क्योंकि दुखदायी विषय भोग तो विष्टा खाने वाले नारकीय जीवों को भी मिल जाता है। अतएव, मैं कहता हूँ कि यह शरीर दिव्य तप करने योग्य है, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अनन्त ब्रह्मसुख प्राप्त होता है।

२. आवश्यक ब्रह्मचर्य :

यद्यपि मनुष्य जन्म की सफलता और पूर्णतया-धर्माचरण तो सर्वविरति ब्रह्मचर्य के पालन में ही है, लेकिन सर्वविरति ब्रह्मचर्य, जिसे चतुर्थ महाव्रत कहा गया है, यह तो गृह-संसार का त्यागी ही स्वीकार कर सकता है। गृह-संसार में रहते हुए, ऐसा न कर सकने वाले पुरुष स्त्री को कम से कम क्रमशः २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो अखण्ड ब्रह्मचर्य पालना चाहिए। इस अवस्था तक अखण्ड ब्रह्मचर्य न पालना अपने आपको अवनति, रोग एवं मृत्यु के मुख में धकेलता है। स्मृतिकार कहते हैं—

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाऽऽधं गुरोःकुले।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत।।

—मनुस्मृति।

पूर्णायु का चौथा भाग यानि १०० वर्ष में से २५ वर्ष गुरुकुल में रहकर, अविलुप्त रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

इस प्रकार, कम से कम २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए।

३. विवाह कौन करते हैं ?

२५ और १६ वर्ष की अवस्था होने पर ही पुरुष और स्त्री इस बात के निर्णय पर पहुँचते हैं कि हम आयु भर ब्रह्मचर्य पाल सकते हैं

या नहीं अर्थात् पूर्ण अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने की शक्ति हममें है या नहीं? जो लोग ऐसा करने में समर्थ होते हैं, वे तो पूर्ण ब्रह्मचर्य की ही आराधना करते हैं—विवाह के झंझटों में नहीं फंसते, जैसे भीष्म पितामह। लेकिन जो लोग संसार में रहते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने में अपने आपको असमर्थ देखते हैं, वे विवाह कर लेते हैं, किन्तु दुराचार में प्रवृत्त नहीं होते। यद्यपि जैन-शास्त्रों में तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान पाया जाता है, विवाह विषयक विधान नहीं पाया जाता, लेकिन नीतिकारों ने पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत पालने में असमर्थ लोगों के लिए विवाह का विधान और विवाह न करके दुराचार में प्रवृत्त होने का अत्यन्त निषेध किया है। अर्थात् यह कहा गया है कि यदि विवाह नहीं करना है, तो ब्रह्मचर्य पालें, लेकिन दुराचार में प्रवृत्त न हो। जैन शास्त्रों में भी ऐसा विधान कहीं नहीं मिलता कि जो लोग सर्वविरति ब्रह्मचर्य पालने में असमर्थ है, उन्हें, विवाह न करने देकर दुराचार में प्रवृत्त होने दिया जाय। हाँ, जैन शास्त्रों में दुराचार-प्रवृत्ति का निषेध अवश्य है। वे (विवाह न करके-या विवाह करके) पर-स्त्री-गमन करने वाले को तो दुराचारी कहते हैं, लेकिन विवाह करने वाले को दुराचारी नहीं कहते।

क्रमशः

हरिश्चन्द्र–तारा

ब्राह्मणपुत्र, तारा को धर्म-कथा सुनाने के लिए बुलाता, लेकिन तारा उससे कह देती कि धर्म सुनने की आवश्यकता उसके लिए है, जो धर्म न जानता हो। मेरा धर्म आप लोगों की सेवा करना है, जिसे मैं समझती और करती हूँ। मुझे धर्म सुनने की आवश्यकता नहीं है, न मेरे पास इतना समय ही है, कि मैं सुन सकूँ।

ब्राह्मणपुत्र, जब इस उपाय से भी तारा को अपनी ओर अकर्षित करने में असमर्थ रहा, तब वह और कोई उपाय सोचने लगा। उसने विचारा, कि स्त्री का प्रेम अपने पुत्र पर अधिक रहता है। पुत्र के होते हुए, वह किसी भी बात की अपेक्षा नहीं करती। इस दासी की भी यही दशा है। इसका भी प्रेम इसके पुत्र पर ही है। मुझसे और इसे प्रेम होने देने में, यह पुत्र की बाधा है। किसी प्रकार यह दूर हो जाय; तब मैं अपने कार्य में सफल हो सकूँगा।

रोहित को, अपने मनोरथ का बाधक समझ, ब्राह्मणपुत्र उसे कष्ट देने लगा। वह, कभी तो, रोहित से ऐसे काम करने को कहता, जिन्हें कर सकना रोहित की सामर्थ्य की सीमा से बाहर की बात होती, कभी किसी बहाने उसे इधर-उधर भटकाता, कभी धमकाता कभी मारता और कभी चुटकी काटता। रोहित, एक तो वैसे ही तेजस्वी बालक था, दूसरे होनहार था और परिस्थिति को समझने लगा था। इसी कारण वह ब्राह्मणपुत्र के अत्याचारों को चुपचाप सह लेता; लेकिन तारा को अपने पुत्र पर ब्राह्मणपुत्र द्वारा अत्याचार होते देख दुःख होता। एकदिन उन्होंने ब्राह्मणपुत्र से नम्रता पूर्वक प्रार्थना की, कि यह रोहित अभी बालक है। आप इससे जो काम

कहा करते हैं, उनके करने में यह असमर्थ है। इसके सिवा आपके यहाँ मैं काम करने आई हूँ, सो मैं काम करती ही हूँ। यह बालक मेरे ही भोजन में से खाता है इसके लिए मैं भोजन भी पृथक नहीं लेती हूँ, ऐसी अवस्था में आपका इसे कष्ट देना उचित नहीं है। यह बात दूसरी है कि रोहित अपनी इच्छा से स्वयं काम करे, लेकिन इस प्रकार इस पर अत्याचार करना, न्यायोचित-कार्य नहीं कहला सकता। कृपा करके, आप इस बालक पर दया रखिए और इसे कष्ट न दीजिए।

ब्राह्मणपुत्र ने तारा की इस प्रार्थना के उत्तर में कहा– मैं जब अच्छा खाना और अच्छा कपड़ा आदि देता हूँ, तुम्हें धर्म कथा सुनाने के लिए बुलाता हूँ, तब तो तुम अकड़ी-अकड़ी फिरती हो और अब ऐसा कहती हो?

तारा– आप मुझे जो कुछ देना चाहते थे, यह आपकी कृपा थी, लेकिन मैंने उन्हें नहीं लिया, तो इसमें मेरी ही हानि हुई, आपकी क्या हानि हुई, जो आप क्रुद्ध हो?

ब्राह्मणपुत्र, तारा की इन बातों से कुछ क्रुद्ध हो उठा। उसने अपने घर की स्त्रियों से कहा, कि दासी के लिए जो भोजन दिया जाय, वह मुझे बताकर दिया जाय। यह स्वयं कहती है, कि ज्यादा खाने से आलस्य पैदा होता है, जिससे स्वामी के कार्य में बाधा पहुँचती है। अतः इसे ज्यादा और अच्छा भोजन देना ठीक नहीं है।

तारा को, अबतक एक मनुष्य के खाने जितना भोजन मिलता था और उसी में वे पुत्र सहित अपना निर्वाह करती थी। लेकिन ब्राह्मणपुत्र अब इतना भोजन देने लगा, कि जिससे एक मनुष्य की क्षुधा भी पूर्णतया न मिट सके। तारा भोजन लाकर, रोहित को खाने के लिए बैठा देती। रोहित स्वभावानुसार माँ से भी खाने को कहता, परन्तु तारा उसे समझा देती, कि तुम खा लो, फिर मैं सब भोजन खा लूँगी। कभी-

कभी, जब रोहित हठ करके कहता, कि यदि तुम न खाओगी, तो मैं भी न खाऊँगा, तब तारा छोटे-छोटे ग्रासों से खाने लगती। धीरे-धीरे रोहित समझता चला, कि मेरी माता मेरे लिए भूखी रहती है।

ब्राह्मणपुत्र, तारा को कम भोजन देकर भी शान्त न हुआ। वह, उसने अधिकाधिक काम लेने लगा। एक दिन, उसने तारा को गंगा से जल भर लाने की आज्ञा दी। तारा, मालिक की आज्ञा उल्लंघन करना तो जानती ही न थीं, इसलिए वे, घड़ा लेकर गंगा को जल भरने गई।

जिन रानी को, पीने के लिए भी हाथ से जल नहीं लेना पड़ता था, उन्हीं रानी को, आज स्वयं नदी से जल भरने जाना पड़ रहा है। लेकिन, ये सब वे सत्य के लिए कर रही हैं, इसलिए उन्हें इसका किञ्चित भी दुःख नहीं है।

भंगी के दास हरिश्चन्द्र :

संसार में, सेवा के बराबर कोई कठिन कार्य नहीं है। जो मनुष्य अपने आत्मा का अच्छी तरह दमन कर सकता है, स्वामी की इच्छा के अनुसार अपने स्वभाव को बना सकता है, वहीं सेवाधर्म का पालन कर सकता है दूसरा नहीं। सेवाधर्म कितना कठिन है, इसके लिए भर्तृहरि कहते हैं :—

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटूलो जल्पको वा।
धृष्टः पार्श्वे वसतिच तदा दूरतश्चाप्रगल्भः।।
क्षान्त्या भीरुर्पदिन सहते प्रायशो नाभि जातः।
सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।।

अर्थात् सेवक यदि चुप रहता है, तो स्वामी उसे गूंगा, बोलता है तो बकवादी, पास रहता है तो ढीठ, दूर रहता है तो मूर्ख, सह लेता है तो डरपोक और नहीं सहता है तो उसे नीचकुल का कहता है। मतलब यह कि सेवा-धर्म बड़ा ही कठिन है, योगियों के लिए भी यह अगम्य है।

सेवा के नाम से घबराकर एक और कवि कहते हैं :-

चाहे कुटी अति घने बन में बनावे,
चाहे बिना लोनं कुत्सित अन्न खावे।
चाहे कभी नर नये पट भी न पाये,
सेवा प्रभो पर न पर तू पर की करावे।।

अयोध्या ऐसे विशाल-राज्य के स्वामी महाराजा हरिश्चन्द्र और महारानी तारा, इस समय इसी कठोर सेवाधर्म का पालन कर रहे हैं। उनके हृदय में क्या-क्या विचार होते होंगे, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन जिसके समीप कभी हजारों सेवक रहते हो और फिर उन्हें स्वयं ही सेवक बनना पड़े, ऐसी स्थिति में उनके हृदय में क्या-क्या भाव उत्पन्न हो सकते हैं, यह अनुमान से जाना जा सकता है। परन्तु इनकी इस स्थिति के विषय में जिस कष्ट का अनुमान किया जा सकता है, इन दोनों को वह कष्ट उस रूप में अनुभव नहीं होता। वे तो यही समझते हैं कि ये कष्ट सत्य के चले जाने के कष्ट से कहीं लाख दर्जे अच्छे हैं।-हमें तो कष्ट तब हो सकता है, जब हमारा सत्य न रहे। जबतक हमारा सत्य बना हुआ है, तबतक हमें कोई कष्ट नहीं है। जिस प्रकार एक तपस्वी को तपस्या करते देख और लोग तो समझते हैं, कि इन्हें कष्ट हो रहा है, ये कष्ट सह रहे हैं, लेकिन तपस्वी से पूछने पर वह यही कहेगा कि मुझे कोई कष्ट नहीं है, मैं तो तपस्या कर रहा हूँ, ठीक यही बात राजा और रानी के विषय में भी है। देखते-सुनने वाले तो समझते हैं, कि इन्हें कष्ट हो रहा है, लेकिन वे कह रहे हैं, कि हमें कष्ट तब है, जब हमारा सत्य न रहे। जबतक हममे सत्य है, तबतक हमें कोई कष्ट नहीं।

भंगी से विश्वामित्र को पाँच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ दिला और विश्वामित्र के ऋण से मुक्त होकर, महाराजा हरिश्चन्द्र, भंगी के साथ उसके घर आये। उनके हृदय में, न तो किसी प्रकार की ग्लानि है, न संकोच।

विश्वामित्र के ऋण से मुक्त हो जाने के कारण, उनका चित्त प्रसन्न है और वे परमात्मा को अनेकों धन्यवाद देते हैं, कि तेरी कृपा से मेरा सत्य रह गया। तारा के हृदय में जो वीरता धीरता थी, उसने मुझे जो शिक्षाएँ दी थी, वह तेरी ही कृपा थी। तेरी ही कृपा से, तारा ऐसी स्त्री मिली जिसने मुझे सत्य पर स्थिर रखा।

घर आकर, भंगी ने अपनी स्त्री से कहा कि ये विपद्ग्रस्त सत्पुरुष अपने यहाँ आये हैं। इनको नौकर न समझकर जो कुछ बने इनकी सेवा करना और इनके साथ कभी अनुचित व्यवहार न हो, इसका ध्यान रखना। किसी कवि ने कहा है, कि हंस का तो दुर्भाग्य है, जो उसे तलैया पर आना पड़ा, लेकिन तलैया के तो सद्भाग्य ही हैं, कि उसके यहाँ मान-सरोवर पर रहने वाला हंस मेहमान आया है। इसी के अनुसार इन सत्पुरुष के तो दुर्भाग्य हैं, जो इन्हें अपने यहाँ आना पड़ा, परन्तु अपने तो सद्भाग्य ही हैं, जो ऐसे पुरुष अपने यहाँ आये हैं।

भंगी ने अपनी स्त्री को यद्यपि राजा के विषय में अच्छी तरह समझाया, लेकिन कर्कशा-स्त्रियों पर ऐसे समझाने का क्या प्रभाव हो सकता है? भंगिन का स्वभाव क़र्कश था, इसलिए पति के समझाने पर, जहाँ उसे राजा के प्रति सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए थी, वहाँ वह अपने पति के समझाने का उल्टा ही अर्थ करने लगी। वह कहने लगी, कि जब इससे काम नहीं लेना था, तो पाँच सौ मुहरें खर्च करके क्या इसे सूरत देखने को खरीदा है? मेरे आभूषणादि के लिए तो पाँच सौ मुहरें खर्च नहीं होती, और इस पापी के लिए अकारण ही पाँच सौ मुहरें खर्च कर दी।

कर्कश-स्वभावानुसार भंगिन, अपने पति पर क्रुद्ध हुई। भंगी ने उसे पुनः समझा-बुझाकर और डाट-फटकार दिखाकर शान्त किया।

भंगी के यहाँ राजा के कुछ दिन इसी प्रकार बीते। राजा अपने स्वामी भंगी से कहा करते कि मुझे काम बतलाइए। बिना काम किए, न

तो मेरा समय ही शान्ति से बीतता है न ऐसा करना दास-प्रथा के अनुकूल ही है। लेकिन भंगी राजा को यही उत्तर देता, कि बस आप बैठे रहा कीजिए और जहाँ इच्छा हो, वहाँ घूमते रहिए तथा समय समय पर आपके मुख से मुझे दो शब्द सुना दिया कीजिए, यहीं आपका काम है।

राजा भंगिन से भी काम माँगा करते, लेकिन भंगिन काम देने की जगह और कुड़कुड़ाने लगती। एक दिन, राजा के काम माँगने पर भंगिन ने, क्रोधावेश में राजा को घड़ा लेकर पानी भर लाने की आज्ञा दी। राजा, बड़े ही प्रसन्न हुए, कि क्रोधित होकर भी मालकिन ने काम तो बताया। वे, हर्ष-सहित घड़ा उठाकर पानी भरने चल दिए और उसी पनघट पर पहुँचे, जहाँ ब्राह्मणपुत्र की भेजी हुई तारा जल भरने आई थी।

सच्चे प्रेमी, कभी न कभी, किसी न किसी अवस्था में मिल ही जाते हैं। यदि हृदय में सच्चा प्रेम है, तो वह प्रेमी से अवश्य मिल जाता है। परमात्मा से जिसका प्रेम सच्चा है, उसे परमात्मा न मिले, यह बात असम्भव है। सच्चे प्रेम वाला, परमात्मा से केवल मिलता ही नहीं, किन्तु मिलकर उसी में लीन हो जाता है। सारांश यह कि जिस वस्तु से सच्चा और निष्काम प्रेम है, वह वस्तु अवश्य मिल जाती है। इसी के अनुसार, वे राजा और रानी, जिन्हें एक दूसरे की खबर भी न थी, कि कहाँ हैं, तथा इस बात की आशा भी न थी, कि फ़िर कभी एक दूसरे को देख सकेंगे, आज अनायास ही पनघट पर मिल गये।

पति-पत्नी ने एक दूसरे को देखा। प्रेमी के दर्शन होने पर कितना आनन्द होता है, इस बात को प्रेमी ही जानते हैं, दूसरा नहीं बता सकता। इसी के अनुसार राजा और रानी को भी एक दूसरे को देखकर आनन्द हुआ। इस आनन्द के साथ ही यह विचार कर विषाद भी हुआ कि जो राजा थे और रानी थीं, उन्हें आज पानी भरना पड़ रहा है लेकिन, दर्शन के आनन्द ने इस विषाद को दबा दिया।

पति पत्नी ने एक दूसरे के कुशल-समाचार पूछे। रानी ने राजा से विश्वामित्र का शेष ऋण कैसे चुकाया, यह पूछा। राजा ने उत्तर दिया कि तुम्हारे बतलाए मार्ग पर चलकर मैंने शेष ऋण चुका दिया। तुमने, मानों भविष्य जानकर ही यह कहा था कि सत्य के लिये मैं भंगी के यहाँ भी बिक सकती हूँ। तुम्हारे निर्देशानुसार मैंने भंगी के यहाँ बिककर ऋण चुकाया है।

पति-पत्नी दोनों के हृदय में अपार आनन्द है। वे, इस आनन्द का कारण, स्वामी-आज्ञा-पालन को मानकर, अपने-अपने क्रयी की प्रशंसा कर रहे हैं। राजा विचारते हैं कि यदि मालकिन मुझे पानी भरकर लाने की आज्ञा न देती, तो रानी से मिलने का आनन्द मुझे कहाँ से प्राप्त होता? इसी प्रकार रानी विचारती है कि यदि मालिक मुझे पानी भरने न भेजता तो यह पतिदर्शन का आनन्द, जो मुझे प्राप्त हुआ है, कैसे प्राप्त होता? और पति के विषय में—उन्होंने शेष ऋण कैसे चुकाया होगा तथा वे कहाँ और किस दशा में होंगे—आदि जो चिन्ताएँ थीं, वे कैसे मिटती? यह सब आनन्द अपने क्रयी की आज्ञा पालन का ही फल है।

हर्ष-विषाद मग्न दम्पति, कुछ समय तक इसी प्रकार बात-चीन करते रहे। पश्चात् तारा ने हरिश्न्द्र से कहा—नाथ, यद्यपि आप से दूर होने की इच्छा तो नहीं है, लेकिन जिस प्रकार आप स्वतंत्र नहीं, किन्तु परतन्त्र हैं, उसी प्रकार मैं भी परतन्त्र हूँ। पानी भरने के लिए आये देर हो चुकी है, अतः अब अधिक देर करना मालिक को धोखा देना है।

रानी की बात का राजा ने भी समर्थन किया और कहा, कि अच्छा, तुम भी जाओ और मैं भी जाता हूँ। यदि जीवित है तो फिर कभी मिलेंगे ही।

क्रमशः

तित्थयर वर्ष ३२
अप्रैल २००९ से मार्च २०१०

निबन्ध

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	वरण भूमि बंगाल	डॉ. लता बोथरा	५
२.	जीवन कैसा बनाना है?		१३०,१७२
३.	परिशिष्ट पर्व जैन इतिहास का महत्वपूर्ण पर्व	डॉ० सागरमल जैन	१५७
४.	जीव विज्ञान : द्वादशांग योग	मुनि किशन लाल	१९३
५.	अर्धमागधी आगम साहित्य में श्रुतदेवी सरस्वती	डॉ० सागरमल जैन	२००
६.	जैन धर्म में सरस्वती	डॉ० सागरमल जैन	२२९
७.	जैन जीवन पद्धति	डॉ० जितेन्द्र बी. शाह	२६३
८.	क्या आर्यावती जैन सरस्वती है?	डॉ० सागरमल जैन	२९९
९.	सिद्ध जीवों का स्वरूप		३३५
१०.	गृहस्थ धर्म	पू० श्री जवाहरलालजी म. सा.	३४३,३८१,४१९, ४५५
११.	संसारी जीवों का स्वरूप		३७१,४११,४४३
१२.	सत्य का महत्व	पू० श्री जवाहरलालजी म. सा.	१३०,१७२,२११, २४४,२८५,३११

कथानक :

१.	हरिश्चन्द्र–तारा	१३९,१८२,२१६,२५२,२८९,३२१, ३५१,३९१,४२९,४६५

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 007
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

THITTHAYARA
Vol XXXIII No.12
25th March 2010

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria

Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225